कबीर की कालजयी चेतावनी

आडंबर और आध्यात्मिक भौतिकवाद के विरुद्ध

डॉ. मुकेश नायक

मानवता का सबसे बड़ा शत्रु बाहरी संसार नहीं, बल्कि मन के भीतर बैठे लोभ, अहंकार और आसक्ति हैं . जब तक मन इच्छाओं की बेड़ियों में जकड़ा रहेगा, तब तक वास्तविक स्वतंत्रता संभव नहीं है . सच्चा स्वामी वही है जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली हो .

संत कबीर का प्रसिद्ध दोहा केवल उनके समय के पाखंडी साधुओं पर किया गया व्यंग्य नहीं है, बल्कि हर युग के उस व्यक्ति के लिए एक कालजयी चेतावनी है जो बाहर से धर्म और अध्यात्म का प्रदर्शन करता है, लेकिन भीतर से लोभ, अहंकार और सांसारिक इच्छाओं का दास बना रहता है.

सच्चा संत वह नहीं है जो केवल गेरुआ वस्त्र धारण करे, विशाल आश्रमों की स्थापना करे या हजारों अनुयायियों को अपने आसपास एकत्र कर ले. वास्तविक साधक वह है जिसने मोह, स्वार्थ और भौतिक लालसाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो. कबीर हमें स्मरण कराते हैं कि जो व्यक्ति स्वयं को 'गुरु' या 'स्वामी' कहता है, लेकिन धन, संपत्ति और प्रतिष्ठा के मोह में डूबा रहता है, वह वास्तव में स्वामी नहीं, बल्कि माया का सेवक है.

कबीर के दोहे में प्रयुक्त भाव 'राम नाम कंठे रहा' यह संकेत देता है कि ईश्वर का नाम केवल होंठों और कंठ तक सीमित रह गया है, हृदय तक नहीं पहुंच पाया. सच्ची भक्ति केवल शब्दों का उच्चारण नहीं है; उसका वास्तविक स्वरूप आचरण में दिखाई देता है. यदि मन लोभ, ईर्ष्या और अहंकार से भरा हुआ है, तो ईश्वर का निरंतर स्मरण भी आत्मा को शुद्ध नहीं कर सकता.

भारतीय दर्शन भी इसी सत्य की पुष्टि करता है. उपनिषदों में मानव जीवन के सामने दो मार्ग बताए गए हैं—'प्रेय' और 'श्रेय'. प्रेय का अर्थ है सांसारिक सुखों, भोगों और आकर्षणों का मार्ग, जबकि श्रेय आत्मकल्याण, सत्य और आत्मबोध का पथ है. जो व्यक्ति धन, प्रसिद्धि और इंद्रिय-सुखों के पीछे भागता है, वह प्रेय को चुनता है; जबकि त्याग, विवेक और सत्य का अनुसरण करने वाला श्रेय को प्राप्त करता है.

ईशावास्य उपनिषद सिखाता है कि संसार के संसाधनों का उपयोग संयम और अनासक्ति के साथ करना चाहिए, क्योंकि अंतत: सब कुछ ईश्वर का है. संग्रह और आसक्ति मनुष्य को सत्य से दूर ले जाते हैं. इसलिए अनासक्ति को संत का सबसे महत्वपूर्ण गुण माना गया है.

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण भी चेतावनी देते हैं कि जो व्यक्ति बाहर से धर्म और संयम का प्रदर्शन करता है, लेकिन मन ही मन विषय-वासनाओं में लिप्त रहता है, वह मिथ्याचारी है. धर्म का मूल्य बाहरी रूप, वेशभूषा या अनुष्ठानों में नहीं, बल्कि अंत:करण की पवित्रता में निहित है.

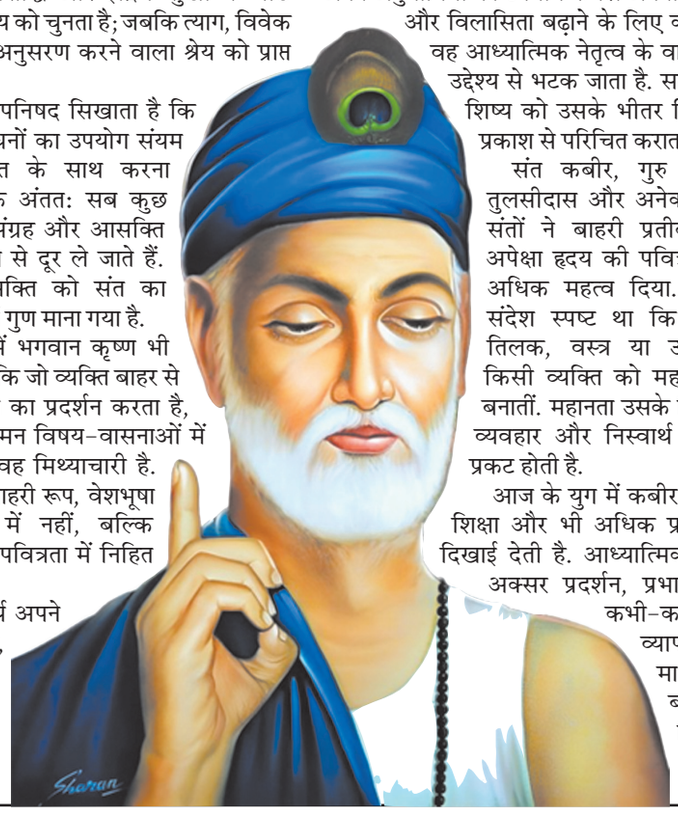

गुरु का कार्य अपने शिष्यों से सेवा, सम्मान या धन प्राप्त करना नहीं, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भरता और आत्मजागरण की ओर ले जाना है. जो शिक्षक अपने अनुयायियों का उपयोग केवल अपनी प्रसिद्धि और विलासिता बढ़ाने के लिए करता है, वह आध्यात्मिक नेतृत्व के वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है. सच्चा गुरु शिष्य को उसके भीतर विद्यमान प्रकाश से परिचित कराता है.

संत कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास और अनेक महान संतों ने बाहरी प्रतीकों की अपेक्षा हृदय की पवित्रता को अधिक महत्व दिया. उनका संदेश स्पष्ट था कि माला, तिलक, वस्त्र या उपाधियां किसी व्यक्ति को महान नहीं बनातीं. महानता उसके विचारों, व्यवहार और निस्वार्थ प्रेम में प्रकट होती है.

आज के युग में कबीर की यह शिक्षा और भी अधिक प्रासंगिक दिखाई देती है. आध्यात्मिकता को अक्सर प्रदर्शन, प्रभाव और कभी-कभी व्यापार का माध्यम बना दिया जाता है. किंतु किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक ऊंचाई उसके अनुयायियों की संख्या, सामाजिक प्रभाव या आर्थिक संपन्नता से नहीं मापी जा सकती. सच्ची आध्यात्मिकता विनम्रता, सेवा और आत्मानुशासन के रूप में प्रकट होती है.

यह संदेश केवल संतों और गुरुओं के लिए नहीं है. यह प्रत्येक सामान्य व्यक्ति के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है. हम सभी को स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि क्या हमारी आस्था केवल शब्दों तक सीमित है या हमारे कर्मों में भी दिखाई देती है? क्या हमारा जीवन करुणा, सत्य और सद्भावना से संचालित होता है? क्या हम अंतहीन अपेक्षाओं के बोझ तले दबे हैं या निस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं?

कबीर के लिए अध्यात्म कोई वस्तु नहीं था जिसे खरीदा या बेचा जा सके. वह आत्मा की यात्रा है. जो लोग धर्म को लाभ, प्रतिष्ठा और प्रभाव का साधन बना लेते हैं, वे न केवल स्वयं मार्ग से भटकते हैं, बल्कि दूसरों को भी भ्रमित करते हैं.

इसलिए हमें केवल बाहरी दिखावे से प्रभावित नहीं होना चाहिए. किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके चरित्र और कर्मों के आधार पर करना चाहिए. करुणा, सत्य, सेवा और निस्वार्थता पर आधारित जीवन ही वास्तविक आध्यात्मिक जीवन है.

कबीर का यह संदेश हमें एक अनमोल शिक्षा देता है कि ईश्वर का नाम केवल होंठों पर नहीं, बल्कि जीवन में उतरना चाहिए. त्याग के बिना भक्ति अधूरी है और निस्वार्थता के बिना आध्यात्मिक नेतृत्व खोखला. जो व्यक्ति माया का दास बना रहता है, वह कभी स्वामी नहीं बन सकता; स्वामी वही है जिसने स्वयं पर विजय प्राप्त कर ली हो.

यही कबीर की साधना का सार है, यही धर्म का हृदय है और यही मनुष्य की वास्तविक मुक्ति का मार्ग है.

क्लास by बड़े भाई

अरे, ठहरकर चलिए.. पहुंच जायेंगे

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, तनिक आप अपने आसपास नज़र दौड़ाइए..आप देखेंगे लोग भाग सा रहे हैं, सबकुछ जल्दी जल्दी पा लेने की बेचैनी है.. जिनके पैर नही चल पा रहे वो अपने दिल दिमाग को ही वहां पहुंचाने में लगे हैं .. अब आप यह कह सकते हैं कि दिमाग तो चलना ही चाहिए, यह तो अच्छी बात है..जी बिलकुल लेकिन आप इसे ऐसे समझिये यदि चलना अच्छी बात है तो क्या गली छोड़कर कीचड़ काँटों पर भी चलना अच्छी बात होगी ? नही ना.. वैसे ही अगर दिमाग बेचैनी हडबडाहट लिए चल रहा तो निश्चित तौर पर उसका इस तरह चलना अच्छी बात नही है. मैं दिमाग के इसी तरह चलने को संभालने की बात कर रहा हूँ..

छोटे भाई, मेरा ठहरने से मतलब रुकना नही है.. मेरा मतलब है जीवन के हर क्षण को पूरी चेतनता के साथ जीते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढने से है.. कुछ लोग समय से निकलते हैं कहीं पहुँचने के लिए लेकिन फिर भी उन्हें वहां पहुँचने की बेचैनी और जल्दी उनके इस सफ़र के क्षण को तहस नहस कर देती है..वो इस सफ़र के क्षण को मिटटी मानकर रखते हैं..

विचार करिये क्या यह सही है..? क्या इस सीमित जीवन का कोई क्षण मूल्यहीन हो सकता है.. ? क्या लक्ष्य पाने के क्षण के अलावा सारे क्षण कुछ नही होते ? छोटे भाई, यह बात आपको लक्ष्य से भटकाने के लिए नही है बल्कि यह लक्ष्य की ओर बढने के एक शानदार तरीके की है जीवन का हर क्षण अपने में बहुत कुछ है.. जीवन आनंद और प्रसन्नता का प्रतीक है..इसको खोने के बदले अगर कुछ भी मिलता है सब छोड़ दिया जाना चाहिए..

कहना यह चाहता हूँ कि सफ़र में ठहरकर लक्ष्य पाने की तैयारी करिये..तैयारी का आनंद लीजिये.. हर क्षण का आनंद लीजिये..पहुँच जायेंगे.. जहाँ का इरादा होगा..

आपकी खुशी की चाबी आपके पास है

विनोदानन्द झा

आधुनिक जीवन में हमारी सबसे बड़ी कमजोरी यह बन गई है कि हमने अपनी खुशी और ग़म की चाबी दूसरों की जेब में रख दी है. कोई तारीफ कर दे तो हम फूले नहीं समाते, और कोई दो कड़वे शब्द कह दे तो हम हफ़्तों तक उदास रहते हैं. भगवान बुद्ध ने कहा था कि यदि कोई आपको कोई उपहार दे और आप उसे स्वीकार न करें, तो वह उपहार देने वाले के पास ही रह जाता है. ऐसे में यह अनुभूति होना कि 'मेरा मान, अपमान, खुशी और ग़म दूसरों के हाथ में नहीं है'—मानसिक आज़ादी और आत्म-साक्षात्कार की पहली सीढ़ी है.

शांत रहना कोई कमजोरी नहीं है. शेर जंगल का राजा इसलिए नहीं है कि वह हर जानवर पर दहाड़ता है. वह इसलिए राजा है क्योंकि उसे अपनी शक्ति साबित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती. कोई व्यक्ति आपके धैर्य की परीक्षा लेगा, तो कोई आपको उकसाएगा. लेकिन याद रखिए—जो व्यक्ति आपको क्रोधित कर सकता है, वह आपको नियंत्रित भी कर सकता है.

जब आप तुरंत प्रतिक्रिया देते हैं, तब निर्णय आपका नहीं, आपकी भावनाओं का होता है. और भावनाओं में लिया गया निर्णय अक्सर पछतावे का कारण बन जाता है. आपका सम्मान, अपमान, सुख और दुख केवल आपकी सोच तय करती है. लोग सिर्फ परिस्थितियाँ पैदा करते हैं, लेकिन उन्हें स्वीकार करना या न करना पूरी तरह आपके हाथ में है. जरा सोचिए, यदि कोई व्यक्ति एक बटन दबाकर आपको गुस्सा दिला सके या उदास कर सके, तो आपके जीवन का मालिक कौन हुआ? निश्चित रूप से वह दूसरा व्यक्ति.

दूसरों के हाथों की कठपुतली बनने के बजाय अपने मन का राजा बनना ही जीवन की सबसे बड़ी जीत है. श्रीमद भगवदगीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु
विगतस्पृह:.वीतरागभयक्रोध:
स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

अर्थात सच्चा शक्तिशाली व्यक्ति वह नहीं जो हर अपमान का उत्तर दे, बल्कि वह है जो परिस्थितियों के बीच अपने मन को स्थिर रख सके. दु:ख, क्रोध और उकसावे के क्षणों में जो स्वयं को नियंत्रित कर ले, वही 'स्थितप्रज्ञ' है. याद रखिए—कमज़ोर व्यक्ति हर बात पर प्रतिक्रिया देता है. मजबूत व्यक्ति हर प्रतिक्रिया को नियंत्रित करता है. और सबसे शक्तिशाली व्यक्ति वह है,जो जानता है कि कब प्रतिक्रिया देनी है और कब नहीं.

लेखक पूर्व महाप्रबंधक (जनसम्पर्क), बीएचईएल

शीला श्रीवास्तव

लघुकथा

स्वाद

मां के हाथ के गट्टे की सब्जी का जवाब ही नहीं.' मुंह में एक कौर डालते हुए शोभा के पति राकेश बोल पड़े.

पता नहीं क्यों, मैं कितना भी अच्छा खाना बनाती ,

पर मेरे पति के मुख से मेरी प्रशंसा के एक शब्द भी नहीं निकलते . यह सब देखकर शोभा के मन में कहीं ना कहीं सासू मां के प्रति इर्ष्या के भाव पनप गये. उसकी सासु मां इन बातों से अनभिज्ञ आए दिन अपने बेटे के लिए नये- नये पकवान बनाती रहती.

एक बार शोभा के पापा की तबीयत ज्यादा खराब हो गई . आनन-फानन में वह मायके चली गई.

अपने आठ वर्षीय बेटे को भी साथ नहीं ले जा पायी, क्योंकि उसके एग्जाम चल रहे थे.

करीब दस दिन वह अपनी मायके में रही. पापा की तबीयत में सुधार होने के बाद वह अपने घर लौट आई. घर आते ही बेटे ने उसे अपने -आप से जकड़ लिया और बड़े ही मासुमियत से बोला , 'ममा आप इतने दिनों के लिए क्यों चली गई थीं. मुझे दादी के हाथ का खाना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था.'

' वो क्या है न बहू , बच्चों को अपने मां का हाथ का खाना ही अच्छा लगता है क्योंकि बच्चा शुरू से ही अपनी मां के हाथ का खाना जो खाता आया है इसलिए उसके मुंह में वहीं स्वाद चढ़ जाता है और मां के हाथ का स्नेह भी तो उस खाने में शामिल होता है.' उसकी सासु मां ने सहज स्वर में कहा.

इतनी छोटी सी बात वह कैसे नहीं समझ पाई और बेवजह मां - बेटे से हमेशा चिढ़ती रही.

उसके पति उसके भाव-भंगिमा देखकर उसके अंदर चल रहे भावों को भांप गये. इसलिए उसे देखकर मुस्कुराते हुए बोले , 'तुम भी बहुत अच्छा खाना बनाती हो ,वो तो मैं तुम्हें चिढ़ाने के लिए तुम्हारे सामने मां की तारीफ करता था .'

' क्या ?' जाइए मैं आपसे बात नहीं करूंगी.' कहकर वह गुस्से में अपने कमरे में चली आई, और उसका पति उसे मनाने हेतु उसके पीछे - पीछे कमरे मे आ गये.

कविता

स्मृतियों के द्वार

अजय मिश्रा

अनजाना राही कोई ,
अपना सा जब लगता हैं,
तब , स्मृतियों के द्वार ,
वियोग अपनों का खलता हैं,

यादों में खोकर उनकी ,
मैं अतीत से क्या पाऊं ,
उस दौर निज करनी पर ,
गर्व करूं , या कि पछताऊं,

देश काल , स्थिति जैसी ,
करम कथा, वन बैठी वैसी ,
हित स्वार्थ ,जब सब टकरायें,
कभी उत्सव , कभी सोच मनायें,

उदासीनता, गहरी रात सी ,
उदय स्मृति में हैं सालती ,
विस्मृत अतीत क्या कर पाऊं,
क्यों सोच करूं रोऊं गाऊं,

छोड़ गये जो थे अपने ,
हो निर्द्वन्द, स्वयं में स्थित ,
अपनी राह में स्वयं बनाऊं,
क्यों अतीत पर सोच मनाऊं,

स्मृतियों के द्वार बहुत हैं,
अपनी राह में स्वयं बनाऊं,
अर्थहीनता ,त्याग सभी अब ,
निज उजास , में पा जाऊं ,

लघुकथाएं

वेदना

रश्मि गर्ग

आज बहुत समय बाद डॉ रीमा पार्क में दिखी थीं.. उनके साथ एक केयर टेकर भी था .मैंने उनसे नमस्ते करते हुए कहा कि ,आज आपको बहुत दिनों बाद पार्क में देखा है. वो बोली मेरी तबियत ठीक नहीं रहती...अभी भी सही नहीं है...वह तो डॉक्टर ने बाहर घूमने की सलाह दी है ,इसलिए थोड़ी देर के लिए ही आई हूँ . कहते हुए उनकी आँख से दर्द छलक गया . मैंने पूछा क्या हुआ आपको ?

पूरे शरीर में दर्द है मुझे.. बीमारी पकड़ में ही नहीं आ रही है ..डॉ रीमा बोली .

उनकी आँखों से छलके पानी ने ,उनके दर्द की सारी वेदना मुझ तक पहुँचा दी . ज़िन्दगी की कटुता ने मुझे अंदर तक द्रवित कर दिया .

डॉ रीमा , शहर के नामी हॉस्पिटल की मालकिन, स्वयं पेशे से डॉक्टर, साथ ही पति ,दोनों बच्चे, बच्चों के जीवनसाथी सभी डॉक्टर.. .फिर भी बीमारी का पता लगाने में असमर्थ!

विज्ञान कितनी भी तरक्की कर ले कुछ फैसले ईश्वर ने अपने हाथ ही रखे हैं .कुछ वेदनाएँ हम मनुष्यों की पहचान से बाहर ही होती हैं .

मुझे थोड़ी देर पहले अपने घर में पानी की मोटर ख़राब होने के कारण ,हुए विवाद की तस्वीर याद आ गई ,जिसमें मैं अपने पैसे की कमी के कारण अपने जीवन को कमतर आँक रही थी .मायूस हो रही थी ,कि पैसे के बिना कुछ भी नहीं! डॉ रीमा को देखकर मेरा भ्रम काँच की तरह टूट गया .

बूंद बूंद बचाओ

सुभाष चंद्र लखेड़ा

जल संकट को लेकर शहर में आयोजित उस कार्यक्रम में दिल्ली निवासी चकोर जी बतौर मुख्य अतिथि आमंत्रित थे. कार्यक्रम में शामिल होने के लिए चकोर जी एक दिन पहले ही शहर पहुंच गए थे.

आयोजकों ने चकोर जी के ठहरने की व्यवस्था एक पांच सितारा होटल में की थी. अगली सुबह यानी कार्यक्रम वाले दिन चकोर जी ने सुबह पांच उठकर पहले अपने उस भाषण को पढ़ा जिसे उनके एक सहायक ने तैयार किया था. उसके बाद वे शौच क्रिया इत्यादि से निवृत होकर स्नान करने हेतु अपने सुइट के बाथटब में बैठ गए. लगभग तीन सौ अस्सी लीटर जल खर्च करके जब वे बाथटब से बाहर आए तो उन्होंने अपने लिए नाश्ता मंगवाया जिसका बिल पंद्रह सौ रुपये था. खैर, ठीक नौ बजे वे आयोजकों द्वारा भेजी हुई वातानुकूलित कार से सभा स्थल के लिए रवाना हुए.

कार्यक्रम में लोग भारी संख्या में उपस्थित थे. चकोर जी ने लोगों से गांधी जी के बताए रास्ते पर चलने का आग्रह किया. उन्होंने लोगों को जीवन में सादगी की जरूरत के बारे में समझाया. उनका कहना था कि आज समूचा विश्व जल संकट से जूझ रहा है. ऐसे में सभी लोगों को जल का इस्तेमाल किफायत से करना चाहिए. उन्होंने इस अवसर पर ' बूंद - बूंद बचाओ, जल संकट से मुक्ति पाओ ' का नारा भी दिया.

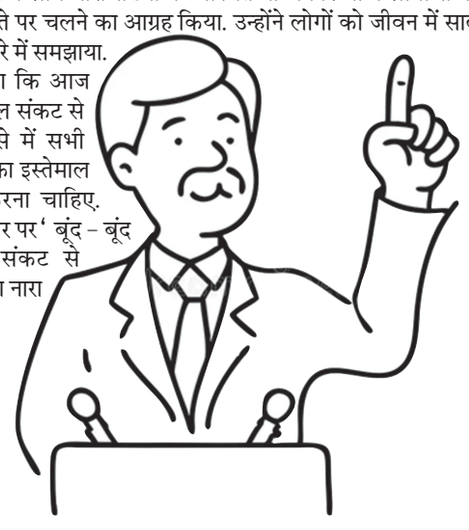

कविता

ललन चतुर्वेदी

स्त्री शाम की प्रतीक्षा करती है

खिड़की से बाट जोह रही है एक
जोड़ी आंखें
इसमें प्रेयसी वाली प्रतीक्षा का
चुलबुलापन नहीं है
वह? बिलकुल एकटक देख रही है
सड़क की ओर
जो उसके घर की तरफ आती है

दिन भर की थकन के बाद वह
सुस्ताने के लिए नहीं बैठी है
वह इसलिए बैठी है कि साथ में
बैठकर पिए एक कप चाय
वह जानती है उस पुरुष की थकान
जो लौट रहा है दिन भर झेलकर
तमाम तरह के झंझावात

जैसे ही मुड़ते हैं उस पुरुष के पांव?
उसके मन की आंखें मुस्करा उठती
हैं .

खोलकर झट से किवाड़
नजरें उठाए बिना
वह सीधे करती है रसोई का रुख़
छू मंतर हो जाती है
दिन भर की उसकी थकान
प्रतीक्षा की पावनता में वह इस तरह
मेज पर रखती है चाय
जैसे गंगा से निकली हो कोई
सद्यस्नाता .

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी